

प्रथम अध्याय

भारतीय रंगमंच की प्रस्तुति या विवेचन

1.1 भारतीय रंगमंच का अर्थ

नाटक और रंगमंच सम्भवतः मनुष्य जाति का पहला और सदियों तक एकमात्र सशक्त एवं जीवन्त जन-माध्यम रहा है। बदलते हुए समय और समाज के साथ-साथ इसके स्वरूप सरोकार भी लगातार बदलते रहे। प्राचीन काल में शास्त्रीय रंगमंच राज्याश्रित था और लोक-रंगमंच जनाश्रित। मध्यकाल में मुसलमान मुगल शासकों ने कलाओं के लगभग सभी रूपों का खूब विस्तार किया। परन्तु अपनी धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक वर्जनाओं-मर्यादाओं के कारण, रूपक एवं रंगकर्म को मूर्तिपूजा के समकक्ष मानकर, उन्होंने रंगमंच को पूरी तरह निराश्रित एवं उपेक्षित बना दिया। ऐसे संकट-काल में नाटक ने धर्म-स्थानों की शरण ली और लीला-नाटकों का धार्मिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। अंग्रेजों के आगमन के साथ उनके शेक्सपीरियन नाटकों से प्रभाव ग्रहण कर हमारा नाटक व्यावसायिक पारसी रंगमंच के रूप में विकसित हुआ तो उसकी कलाहीनता की प्रतिक्रिया में गम्भीर एवं सुसंस्कृत शौकिया रंगकर्म की शुरुआत हुई। आजादी के बाद पारसी-व्यवसायिक थियेटर के मुकाबले यह सार्थक, गम्भीर एवं कलात्मक प्रोफेशनल और शौकिया प्रयोगशील रंगकर्म के रूप में विकसित हुआ।¹

रंगमंच वह स्थान है जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि हो। रंगमंच शब्द रंग और मंच दो शब्दों के मिलने से बना है। रंग इसलिये प्रयुक्त हुआ है, कि दृश्य को आकर्षक बनाने के लिये दीवारों, छतों और पर्दों पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है और अभिनेताओं की वेषभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगों का प्रयोग होता है, और मंच इसलिये प्रयुक्त हुआ है कि दर्शकों की सुविधा के लिये रंगमंच का तल फर्श से कुछ ऊंचा रहता है। दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार और रंगमंच सहित समूचे भवन को प्रेक्षाग्रह, रंगशाला या नाट्यशाला (या नृत्यशाला) कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे थियेटर या ओपेरा नाम दिया जाता है। कई जगह रंगमंच का भावार्थ प्रयत्न लाघव के अनुसार 'मंच' से भी लिया गया है।

रंगभूमि या रंगमंच एक व्यापक शब्द है, जिसके अंतर्गत रंगशाला, काव्य (नाटक), अभिनय (प्रयोक्ता, निर्देशक, रंगकर्मी और रंगशिल्पी) तथा सामाजिक (प्रेक्षक) सभी आ जाते हैं। अपने सीमित अर्थ में रंगमंच रंगशाला का बाचक बनकर रह गया है।

रंगमंच मनुष्य की सनातन प्रवृत्ति है, आधुनिक समय में रंगमंच राष्ट्र की पहचान भी है। "रंगमंच क्रिया का उद्भव मानव चेतना के साथ हुआ है यह एक चेतन कला है, जिसके द्वारा जीवन का जीवन्त रूप प्रदर्शित होता है।" स्पष्ट है कि रंगमंच एक अनिवार्य मानव प्रवृत्ति है—अनिवार्य आदिम सत्य; जिसकी मानव संस्कृति में उपलब्ध कोई अन्य विभूति नहीं कर सकती।²

पाश्चात्य रंगदर्शन के अनुसार—

“ A building, room or outdoor structure for the presentation of plays, films or other dramatic performances, where the emotions play an important role”

रंगमंच एक विविध पक्षीय संस्था है। जिसका एक पक्ष नाटककार है जो रंगमंचीय प्रस्तुति के लिये आलेख तैयार करता है। आलेख रंगमंच के लिए आधार प्रस्तुत करता है और स्वयं उसकी रचना-प्रक्रिया में रंगमंच का विधान होता है। नाटककार के पास अपने भावों को व्यक्त

करने के लिए अनेक साधन—गीत, संगीत, चित्र, सजे—सजाये पात्र, दृश्य पट, रंगमंच आदि सुलभ होते हैं। रंगमंच एक स्थूल मंडप मात्र नहीं है बल्कि यह एक गतिशील विधा है। रंगमंच एक स्थल न होकर, एक विधा है। इसमें नाट्य प्रस्तुतीकरण, दर्शक और रंगभवन आदि तत्व सम्मिलित हैं। रंगभवन में मंच और रंगशाला उभयनिष्ठ है। प्रस्तुतीकरण में दो तत्व हैं—निर्देशक और प्रबन्ध।³

‘रंगमंच’ तो समाज के सम्मुख रस रचना करने वाली खुली धर्मशाला है। नाट्य शास्त्र में वर्णित विकृष्ट नाट्य मण्डप के संदर्भ में प्रसाद जी का मत है—उस भूमि के दो भाग किये जाते थे। पिछले आधे के फिर दो भाग होते थे। आधे में रंगशीर्ष और रंग पीठ और आधे के पीछे नेपथ्यगृह बनाया जाता था। ‘रंगमंच’ में भी दो भाग होते थे। पिछले भाग को रंगशीर्ष कहते थे और सबसे आगे का भाग रंगपीठ कहा जाता था। इन दोनों के बीच जवनिका रहती थी।⁴ इन पंक्तियों में प्रसादजी ने रंगमंच शब्द का जो प्रयोग किया है उसका अभिप्राय नाट्य प्रस्तुतिकरण स्थान तथा नाट्य मंच से है। प्रकट है कि भारत में रंगमंच शब्द का अनेकार्थक व्यवहार हुआ है। डॉ. रामसेवक सिंह के अनुसार रंगमंच का अर्थ मंच ही होता है। रंगमंच ऐसी कला माध्यम है, जिसमें बहुत से व्यक्तियों और तत्वों का योग होता है। इसका मूल संगठनकर्ता एक भिन्न व्यक्ति भी हो सकता है।

रंगमंच का अर्थ बड़ा व्यापक है। आज कला माध्यम के रूप में रंगमंच हमारी सृजनात्मक अभिव्यक्ति का आधार माना जा रहा है। रंगमंच तथा नाटक की प्राचीनता के सम्बन्ध में बड़ा विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार जातक कथाओं में नट तथा नाटक के अगणित वर्णन मिलते हैं।

विद्वानों के अनुसार—

‘रंगमंच साहित्य, कला एवं संस्कृति के उन्नयन का निकष है।’

‘रंगमंच को सभी कलाओं का मिलन—बिन्दु और जन—जीवन के कल्याण और मनोरंजन का समवेत माध्यम माना गया है।’

‘डॉ. दशरथ ओझा ने रंगमंच का अर्थ नाट्य प्रदर्शन वाले ऊँचे स्थान विशेष से लिया है।’

‘स्वांग, भवाई और लड्डा लोक नाट्यों के शास्त्रीय विवेचन करते हुए डाक्टर दशरथ ओझा लिखते हैं— “रंगमंच पर पट—परिवर्तन और दृश्य—परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। वहाँ संकलन—त्रय की कहीं अपेक्षा नहीं.....” यहाँ रंगमंच का अर्थबोध अंग्रेजी के स्टेज से होता है।’

डॉ. लक्ष्मीनारायण ने रंगमंच का अर्थ व्यावसायिक विद्या, नाट्य वृत्ति, नाट्य परम्परा से लगाया है।

सर्वदानन्दजी ने शब्दों में ‘रंगमंच का अर्थ यदि केवल ईट—पत्थरों से बना भवन हो या प्रेक्षा स्थल हो तो बात दूसरी है, अन्यथा आजकल तो नाटकों की आत्मा को प्रस्फुटित करने वाले रंगमंच ही विशेष प्रयोग में आते हैं।

1.1.1 थियेटर और रंगमंच

उपर्युक्त शब्दों को लेकर बड़ा विवाद और मतिभ्रम फैल रहा है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने अपने एक लेख 'कुछ-विचार' में रंगमंच को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'भारत में रंगमंच शब्द की जगह पहले नाट्य-गृह, नाट्य-शाला आदि शब्दों का प्रयोग होता आ रहा है।' 'नाटक', 'नट', 'अभिनय', 'साज-सज्जा' सबको मिलाकर अब रंगमंच शब्द का प्रयोग होने लगा है। रंगमंच की व्याख्या के साथ-साथ यह कथन है कि रंगमंच शब्द थियेटर का अनुवाद है, विचारणीय है। यह प्रश्न भी यवनिका के लिये दिये गये मतमतान्तरों से कम नहीं है।

प्रायः 1576 ई. में यह जेम्स बरबाज (James Burbage) ने एक नाट्य-शाला का निर्माण कराया और इसे थियेटर की संज्ञा दी।⁵

Theater, variant spelling of theatre. Hence theaterian, one connected with stage.
an actor:

1602 Dekker Satirom wks. 1873. Stage works.

Theater, Theater-the word was completely naturalized in L.whence It., Sp teatro, Pg.Th-eatro, OF. teater theater (12-13th c)

The earliest recorded English forms, c 1380, are theatre and teatre, from c. 1550 to 1700 or later the prevalent spelling was theatre (so in Dictionaries from Cawdrey to kersay) but theatre in Holland, Milton, Fuller, Dryden. Addison, Pope, Bailey 1721 has both "Theatre Theatre" and between 1720 and 1721 theatre was dropped in Britain has remained or (?) revived in U.S. The pronunciation, or its accentuation, appears in found as early as 1591.

- (1) खुली वायु में बनाया गया स्थान, जिस पर नाटकादि देखें जाते हैं।
- (2) नाटकीय प्रस्तुतीकरण का स्थान, नाट्यघर।
- (3) मंच, जहाँ पर नाटकीय प्रदर्शन होते हैं, प्लेटफार्म।
- (4) साधारण प्लेटफार्म, जिस पर सार्वजनिक उत्सव होते हैं।
- (5) एक कमरा अथवा चहार दीवारी से घिरे हुए बड़े कक्ष, जहाँ पर संभाषण, प्रदर्शन आदि होते हैं।
- (6) अभिनय-स्थल।
- (7) किसी विषय पर विचार पूर्ण पुस्तक।

इन उक्तियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'थियेटर' शब्द का प्रचलन 16 वीं शताब्दी से आज तक किन-किन अर्थों में हुआ है। यह स्मरणीय है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय नाट्य परम्परा बहुत थी।

डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार हिन्दी रंगमंच की उत्पत्ति संवाद तत्व के आधार पर 13वीं शताब्दी में हुई है।⁶ इस प्रकार सिद्ध है कि रंगमंच विषयक शब्दों का अलग-अलग प्रयोग संस्कृत नाट्यों में अंग्रेजी थियेटर से बहुत पहले हो चुका था। अतः यह धारणा है कि रंगमंच शब्द थियेटर का अनुवाद है समीचीन प्रतीत नहीं होती। श्री सर्वदानंद की मान्यता है कि पारसी काल में रंगमंच शब्द उतना बहुचर्चित और प्रचलित शब्द नहीं था।

यह माना जा सकता है कि थियेटर शब्द को भारत में 'सिनेमा' की जगह अवश्य प्रयुक्त किया गया है। आजकल तो सिनेमाघरों के नाम के पीछे भी थियेटर शब्द जोड़ने का फैशन चल

पड़ा है। कलकत्ता के मूनलाइट थियेटर में पहले प्रातः सिनेमा चलता था, सायंकाल रंगारंग कार्यक्रम। वह पहले एक सिनेमाघर था, किन्तु नाटकों के प्रदर्शन भी वहाँ होते थे। संभवतः इसीलिए थियेटर शब्द रंगमंच के लिये प्रयुक्त होने लगा था। आज भी कलकत्ता के कुछ ऐसे बंगाली नाट्यघर हैं, जिन्हें थियेटर कहा जाता है, जैसे— 'विश्व-रूपा थियेटर'। थियेटर को लोकभाषा में 'ठेठर' भी कहा गया है।

थियेटर का अर्थ एक चहार दीवारी से 'बन्द सिनेमा हॉल' से है, किन्तु रंगमंच का अर्थबोध बड़ा ही विस्तृत है। अतः सिद्ध है कि थियेटर रंगमंच का एक छोटा सा विभाग है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने एक लेख में 'पश्चिम का थियेटर तथा भारत का नाट्य और रंगमंच' में पश्चिमी साहित्य का प्रयुक्त थियेटर शब्द का अर्थ बतलाते हुए लिखा है— 'वहाँ थियेटर के अंतर्गत नाट्य साहित्य (Drama Literature) प्रस्तुतीकरण (Production) अभिनय (Acting) उपस्थापन (Performance) रंगशिल्प (Stage Technic, Stage Light, Makeup etc.) रंगभवन (Stage and Auditorium both combined unit) और नाट्यालोचन इन शब्दों का शास्त्र समाहित है।

प्रसाद जी ने पश्चिम के अपने गौरवपूर्ण शब्द थियेटर के लिये रंगमंच शब्द का प्रयोग नहीं किया। डॉ. भानु मेहता के एक लेख रंगमंच की टिप्पणी करते हुए सम्पादक ने लिखा है— थियेटर शब्द केवल मंच के लिए ही नहीं आता। मंच और नाटक दोनों इसमें अनिवार्य रूप से निहित है।

भारतीय रंगमंच की परिभाषा

रंग

रंग शब्द का अर्थ जहाँ सार्वजनिक आमोद-स्थली, सभा-भवन मनोविनोद के लिये की जाने वाली क्रीडा, उससे प्राप्त होने वाला आनंद, नृत्य, गीत आदि का उत्सव और वह स्थान जहाँ अभिनय होता है, से लिया गया है। वहीं संस्कृत में 'रंग' शब्द से रंगभूमि, रंगपीठ, रंगशीर्ष आदि नाट्य शास्त्रीय शब्दों की प्रतिष्ठा की गई है। वैसे 'नाट्यशास्त्र' में रंग शब्द पूरे रंगमंच के लिये प्रयोग किया गया है। डॉ० रघुवंश के मत से प्राचीन 'रंग' शब्द आधुनिक 'स्टेज' का पर्याय है, जिसके अंतर्गत रंगमंच सहित संपूर्ण रंगशाला आ जाती है। 'रंग' शब्द का प्रयोग नाट्यमण्डप के अर्थ में भी किया गया है, लेकिन नाट्यमण्डप रंगमंच का स्थूल शरीर है, जिसे रंगमंच का वास्तुपक्ष भी कहा जा सकता है। रंगमंच का वास्तुपक्ष, जहाँ नाट्यमण्डप की रंगशाला है वही नाटक, अभिनेता, निर्देशक, मंच दृश्य, रूप-सज्जा, ध्वनि-वाद्य, संगीत-संयोजन, प्रकाश व्यवस्था, एवं दर्शक उसके अनिवार्य अंग प्रत्यंग है। रंगमंच तो एक जीवन्त कला और संस्कृति का अभिन्न अंग है। इसमें निष्क्रिय स्थूल स्वरूप ही संपूर्ण नहीं, यह युग और जीवन का विश्व-मंच है। जहाँ जीवन प्रदर्शित होता है। वह जीवन के मूल्यों और क्रियाओं से संबद्ध है।⁷ रंगमंचीय क्रिया का उद्भव मानव-चेतना के साथ हुआ है। यह मनुष्य की सनातन प्रवृत्ति की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

‘रंग’ शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जैसे नृत्य, गीत, अभिनय-स्थल, युद्ध-स्थल, वर्ण, यौवन, प्रभाव, व्यापार, अवस्था, क्रीड़ा, उमंग, आनंद, काण्ड, सौंदर्य, दृश्य, प्रसन्नता, कृपा, अनुराग, ढंग, चाल, तर्ज, भांति, प्रकार, दशा, शोभा आदि। ‘रंग को वर्ण के रूप में व्याख्या करते हुए इसका अर्थ समूह में अपने आपको अभिव्यक्त करने वाले अक्षर (जिससे छन्द और रस बनते हैं) से माना है। साथ ही साथ इसे मंगल कार्य करने वाली सरस्वती तथा गणेश की संज्ञा भी दी है।⁸

रंग का अर्थ जब रंगढंग अर्थात् स्वभाव, प्रकृति, व्यवहार आदि से लिया जाता है तब रंगमंच का अर्थ होगा— ऐसा प्रदर्शन स्थान, जहां पर सांसारिक जीवों के स्वभावों एवं प्रकृतियों का प्रदर्शन होता हो। व्यावहारिक रूप से रंग का अर्थ रूप स्वरूप भी प्रतीत होता है। रूप रूपक में अर्थसाम्य भी है क्योंकि रूप का जिस पर आरोप किया जाता है, उसे ही रूपक कहते हैं। वैसे भी रूप के पीछे ‘क’ प्रत्यय जोड़ कर रूपक शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—नाटक। यदि हम ‘रंग’ अथवा ‘रूप’ अथवा ‘रूपक मंच’ शब्द का प्रयोग करें, तो रंगमंच का अर्थ होगा— रूप का अभेद आरोप करने वाले अभिनेताओं की प्रदर्शन स्थली। रंग शब्द का प्रयोग रंगरूप, स्वरूप (पात्र) आदि अर्थों में भी होता है। यदि रंगमंच का अर्थ जीवों की आकृति-प्रकृति (स्वभाव) प्रदर्शन से लें, तो शब्द और व्यापक प्रतीत होता है क्योंकि इन स्वभावों के प्रदर्शन हेतु जुटाए गये साधन, सहयोगी तत्व, कलात्मक प्रयत्न, फल आदि बहुसंख्यक हैं। उनकी गणना न करना रंगमंच की अधूरी परिभाषा देना है। अतः स्पष्ट है कि रंगमंच न किसी इमारत का नाम है, न किसी यवनिका आच्छादित स्थान का नाम है और न ही किसी प्रदर्शन स्थल का नाम है। प्रत्युत रंगमंच एक भाव वाचक संज्ञा है अथवा स्वयं में एक परिपूर्ण विद्या है, जिसके अनेक पक्ष हैं। रंगमंच के अन्तर्गत जीवों के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों के स्वरूपों, लेखक के मन में उठे हुए विचारों और कृति के कथ्य, पठन मनन, निर्देशक, पात्र-चयन, पूर्वाभ्यास, मंच योजना, दर्शक, प्रदर्शन, उद्देश्य, प्रभाव एवं प्रतिक्रियाएँ सभी कुछ समाविष्ट है। इन सभी क्रियाओं के मिश्रित स्वरूप को जो समवेत नाम दिया जा सकता है, वह है ‘रंगमंच’।

मंच

‘मंच’ अंग्रेजी के ‘स्टेज’ शब्द का समानार्थी है। अंग्रेजी का ‘स्टेज’ शब्द रंगभूमि, नाट्य साहित्य और नाट्य वृत्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी मानक कोश में ‘मंच’ शब्द का अर्थ—“सभा समितियों में ऊंचा बना हुआ मण्डल” दिया गया है, मंच के अर्थ में पहले रंगभूमि शब्द का प्रयोग होता था, इसके अतिरिक्त ‘मंचान’ शब्द का प्रयोग होता था जिसका अभिप्राय है ऊंचा स्थल। खेतों में जंगली जानवरों से रक्षा के लिये चार स्तम्भों से मंचान बनाया जाता था। तत्सम रूप में यह शब्द ‘मंच’ बना जो रंगमंच शब्द के रूप में अस्तित्व में आया है जिसका शाब्दिक अर्थ है— ऐसा ऊंचा मंचान जहां रंगों की प्रस्तुति दी जाती है।⁹

“मंच को अंग्रेजी में प्लेट फोर्म (Platform) कहते हैं। मंच मुख्यतः ऐसे बड़े चबूतरे को कहते हैं, जो ईंट, पत्थरों आदि के पायसों, खम्भों या बांसों और लकड़ी के तख्तों से पाट कर किसी विशिष्ट कार्य के लिये बनाया गया हो। यह एक ऐसे क्षेत्र का भी वाचक है जिसमें कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्य होते हैं, जैसे राजनीतिक मंच, साहित्यिक मंच आदि।”¹⁰ साधारण मंच का अर्थ माचा (खटिया) का पर्यायवाची होता है। मंच का अर्थ पलंग, प्रतिष्ठा का स्थान, रंगमंच, व्यास गद्दी आदि से भी लगाया जाता है। राजस्थानी भाषा में ‘माँचा’ शब्द चारपाई के लिये प्रयुक्त होता है। छोटे मांचे के स्त्रीलिंग-स्वरूप को मंचली कहते हैं। उदाहरणार्थ—

1. आप मांचे माथे बिराजो सा।
2. मंचली कमरे रै मांय ढाल दे।

मंच शब्द के कई तद्भव रूप भी हैं, जैसे— माच, माचा, माची, मचान आदि। इनमें 'माच' शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। मालवा में यह शब्द मंच बाँधने और उस पर अभिनीत किए जाने वाले 'ख्याल' (खेल) दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है।¹¹ नाटकीय क्रिया व्यापार के लिये 'मंचन' शब्द प्रचलित हो रहा है। मंच का प्रयोग महाकवि तुलसी और केशव ने भी किया है—'सब मंचन ते मंच इक.....सोभित मंचन की अवली गजदन्त मयी छवी उज्जवल छाई' इस प्रकार मंच का अर्थ ऊँचा बैठने का स्थान अथवा आसन से ही है। मंच से सम्बन्धित कार्यकर्ताओं को मंच-मिस्त्री, मंच-विशेषज्ञ और मंच-व्यावस्था के लिये मंच सज्जा, मंच विन्यास आदि संज्ञाएं प्रयुक्त होती हैं।

मंच शब्द शनैः शनैः बहू-पयोगी होता जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं, जब मंच शब्द का तादात्म्य रंग शब्द के साथ हो जाता है तो वह 'रंगमंच' बन जाता है। वैसे मंच शब्द की एक बड़ी विशेषता यह है कि जब वह किसी शब्द के पीछे लगता है तो इस मिश्रित शब्द का अर्थ भी बहुत विस्तृत हो जाता है। वैसे रंगमंच शब्द का अर्थ अनेक विद्वानों ने अपने अपने ढंग से किया है।

लक्ष्मी नारायण लाल ने मंच की Oxford Dictionary में की गई व्याख्या की ही स्वीकृति दी है—

“Stage is a platform of boards, the part of a theatre of which the actors perform the acting performance.”

अर्थात्— कहा जा सकता है—एक ऐसा स्थान जहाँ विभिन्न रंगों का प्रदर्शन हो। विभिन्न रंग अर्थात् जीवन के विभिन्न भाव, जो स्वयं में भिन्न-भिन्न रसों को समाए हुए हों। आदिकाल में भी रंगभूमि, नाट्यमण्डप जैसे शब्दों का प्रयोग रंगमंच के लिये होता था।

मोनिका तनेजा के अनुसार—

“The word theatre, in its narrower sense a place for the performance of plays literally a seeing place. At the very minimum. It contains two distinct and fairly large areas one for the performances the other for spectators.”

निष्कर्ष रूप में रंग या मंच अथवा रंगमंच कला-संस्कृति के प्रदर्शन का द्योतक है। ये दोनों शब्द अन्योन्याश्रित और पूरक हैं। रंगमंच शब्द की जगह मंच शब्द का प्रयोग सांकेतिक या संक्षिप्तीकृत प्रयोग है। किसी भी प्रस्तुतीकरण के लिए यदि यह कहा जाये कि 'इसे आप मंच पर देखेंगे'— तो यह एक उचित प्रयोग है, किन्तु यह कह देना कि आप इसे अब रंगमंच पर देखेंगे, सही नहीं माना जा सकता क्योंकि रंगमंच शब्द का अर्थविधान बहुत विस्तृत होता है। इसका अर्थ केवल ऊंचे स्थान से ही नहीं है। 'मंच' शब्द रंगमंच का मात्र अंगभूत शब्द है।

1.1.2 रंगमंच के स्वरूप

अन्वेषण के सम्बन्ध में **डॉ० लक्ष्मीनारायण का मत है—** “रंगमंच का स्वरूप अन्वेषण और उसका अर्थ गौरव जीवन की ही भाँति है। वह अपने अतज में जितना गहन और अमूर्त है, भौतिक धरातल पर यह उतना ही मूर्त और विराट है जितना ही यह एक ओर आदिम और सनातन है,

उतना ही गत्यात्मक और युग सापेक्ष्य है। यह उतना ही असीम और अपरिमेय है कि इसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को देख पाना, अभिज्ञान करना और सबसे अधिक इसे अनुभव गम्य कर पाना किसी समाज अथवा व्यक्ति के लिये परम साधना और सौभाग्य से ही संभव है।¹²

अंग्रेजी विद्वान **जे.वी. प्रीस्टले** ने रंगमंच के सम्बन्ध में लिखा है कि— “नाटककार की प्रतिष्ठा की पूर्ति स्वीकृति रंगशाला के स्वरूप और प्राणवान होने की स्थिति में ही है।” प्रीस्टले की दृष्टि में मंच पर जीवन की निर्माण और पुनः मंच पर जीवन की सार्थकता ही वास्तविक नाटक है। यही नहीं, नाटककार के पात्रों का अस्तित्व केवल दृश्यों में है, कहीं और नहीं।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने रंगमंच के स्वरूप और अर्थ को स्पष्ट करते हुये इस प्रकार लिखा है— “रंगमंच का अर्थ केवल स्टेज या अभिनय स्थान नहीं है, रंगमंच एक कलात्मक संस्था है। राज्य की ओर से या समाज के द्वारा प्रचुर दान से या संपूर्ण हो और विश्वविद्यालय की भांति विद्यार्थियों को रंगमंच के ज्ञान में पूर्णतः दीक्षित कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगमंच शब्द अपने संकुचित अर्थ में तो केवल अभिनय मंच का ही वाचक है, किन्तु व्यापक अर्थ में उसका प्रयोग नाटक तथा अभिनय से संबंधित समस्त स्थानों, वस्तुओं और कार्यविधियों आदि के लिये किया जाता है।¹³

रंगमंच उन सब भावों को अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करता है, जो नाटककार का लक्ष्य है। रंगमंच की सृष्टि जीवन की भांति (स्थित न होकर) गतिशील होती है। जब—जब नाट्यात्मक अनुभव मंच पर जीवन्त होता है, तब—तब रंगमंच अपना रूप बदलता और संवारता है। रंगमंच के द्वारा नाटककार का हृदय सामाजिक प्राणियों से जुड़ता है व रंगमंच के द्वारा किसी भी देश व जाति के उत्कर्ष की झांकी जनता के समक्ष रखी जा सकती है।¹⁴

रंगमंच का आकार—प्रकार, लंबाई—चौड़ाई, साज—सज्जा आदि का विस्तार से विवेचन भारतीय नाटक विशेषणों द्वारा किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में भारतीय रंगमंच का विकास चरम सीमा तक पहुँच गया था। किन्तु हिन्दी नाटकों का रंगमंच भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ है। रंगमंच की तरफ हमारा ध्यान सर्वप्रथम पारसी कहानियों ने ही आकर्षित किया, पर इनका रंगमंच दोषपूर्ण और निम्नकोटि का था। हिन्दी रंगमंच को व्यवस्थित रूप देने वाले बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। इसलिये भारतेन्दु काल में हिन्दी रंगमंच का विकास महाराष्ट्र तथा बंगाल में जितना हुआ, उतना हिन्दी भाषा के क्षेत्र में संभव नहीं हो सका।

उपर्युक्त मतों के प्रकाश में यह कहना उचित होगा कि रंगमंच उन सब भावों को अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करता है, जो नाटककार का लक्ष्य है। रंगमंच की सृष्टि जीवन की भांति (स्थिर न होकर) गतिशील होती है। जब—जब नाट्यात्मक अनुभव मंच पर जीवन्त होता है, तब—तब रंगमंच अपना रूप बदलता और संवारता है। रंगमंच के द्वारा नाटककार का हृदय सामाजिक प्राणियों से जुड़ता है व रंगमंच के द्वारा किसी भी देश व जाति के उत्कर्ष की झांकी जनता के समक्ष रखी जा सकती है।

रंगमंच का अभिप्राय

‘रंगमंच’ शब्द का प्रयोग व्यापक व सीमित दोनों ही अर्थों में किया जाता है। अंग्रेजी में इसके लिये दो शब्द प्रयोग में आते हैं— ‘स्टेज’ और ‘थियेटर’। वस्तुतः स्टेज शब्द रंगमंच के दृश्य स्थूल पक्ष को ही अधिक व्यंजित करता है, किन्तु बाहर से स्थूल भले ही हो उसका आन्तरिक स्वरूप सूक्ष्म होता है। बाह्य स्थूल रूप उस आन्तरिक सूक्ष्म स्वरूप की उपलब्धि का साधन मात्र है।

अंग्रेजी का ‘थियेटर’ शब्द रंगमंच के स्थूल और सूक्ष्म दोनों अंगों की अभिव्यक्ति करता है। थियेटर के अन्तर्गत रंगभवन और उसके स्थूल उपादान ही नहीं आते वरन् नाट्यकृति और समस्त रंगकर्म, उसकी रूढ़ियों और प्रदर्शन में निहित शिल्प, भाव बोध और सर्जनात्मक धरातल भी उसी में सम्मिलित हैं। वस्तुतः थियेटर अपने आप में एक पूरी संस्था एक पूरा सर्जनात्मक अभियान है और उसके कई आयाम और भावभूमियाँ हैं।¹⁵

भरत मुनि ने नाटक की उत्पत्ति को दैवी माना है। ब्रह्मा जी नाट्य के विषय में कहते हैं: यह विविध अवस्थाओं से पूर्ण, अनेक प्रकार के भावों से सम्पन्न लोकवृत्ति का अनुकरण करने वाला नाट्य मेरे द्वारा रचा गया है। त्रेता युग में देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय—कला और अथर्ववेद से रस लेकर पंचम वेद के रूप में नाटक की रचना की। इसमें शंकर ने तांडव और पार्वती ने लास्य जोड़ा। इसके साथ ही नाट्य—मंचन के लिये विश्वकर्मा ने रंगमंच का निर्माण किया।¹⁶

आचार्य भरत के ‘नाट्य’ शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया है। नाट्य के विविध आयामों का विवेचन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि ‘त्रलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकर्तिनम्’ अर्थात् नाट्य में सम्पूर्ण त्रैलाक्य के भावों का अनुकरण है। आगे भरतमुनि ने इसे स्पष्ट करते हुये लिखा है—

‘न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

ना सौ योगे न तत्कर्म नाटयेऽस्मिन्यन्न दृश्यति।।’

(यह रस, भाव कर्म तथा क्रियाओं के अभिनय द्वारा लोक को सुख और शांति देने वाला है और सबसे बड़ी बात यह है कि न ऐसा ज्ञान है, न कोई शिल्प, न कोई कला, न कोई विद्या, न कोई कार्य है जो नाट्य में विद्यमान हो।)

इस प्रकार आचार्य वाचिक अभिनय के सन्दर्भ में भी रंगमंचीय पक्ष को विशेष महत्व दिया गया है।

गोविन्द चातक ने रंगमंच के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए शेक्सपियर के मत का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है कि ‘शेक्सपियर ने रंगकर्म को, प्रकृति को दर्पण दिखाना जैसी क्रिया माना था— यदि इसे दर्पण कहें तो चमत्कारी दर्पण कहना ही उचित होगा।

ऐसा दर्पण जिसमें मानव के युग युग के भावों और संस्कारों की छवि समाहित होती है। रंगमंच नाटक के सम्प्रेषण का माध्यम है, इस सम्बन्ध में गोविन्द चातक का मत द्रष्टव्य है— रंगमंच नाटक के सम्प्रेषण का एक माध्यम है—पर यह सम्प्रेषण सीधा नहीं है, संवेदनात्मक है। वह एक जीवंत विद्या है। देश और काल की सीमा में वह जीवित का आभास देती है। इसीलिये यह जीवन—सदृश्य है। इस जीवन को वर्णित नहीं केवल संवेदित किया जा सकता है। रंगमंच भावों को अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करता है। उन सब भावों को जो चेतना को स्पन्दित करते हैं और

ऐन्द्रीय संवेदनों को जगाते हैं। क्रोध, धृणा, भय, प्रेम के बहुत सूक्ष्म संवेदन जो काव्य और साहित्य की अन्य विधाओं द्वारा अनकहे रह जाते हैं, वे भी रंगमंच पर साकार हो उठते हैं और प्रेक्षक में भी समान अनुभूति जगाने में सक्षम सिद्ध होते हैं तभी हाव-भाव मुद्रा तथा भंगिमा के द्वारा रंगमंच जीवन की गहरी अनुभूति कराता है।¹⁷ इस सन्दर्भ में डॉ. गोविन्द चातक ने रंगमंच के सम्बन्ध में लिखा है कि— 'रंगमंच की सृष्टि जीवन की भांति (स्थिर न होकर) गतिमान होती है। जिस तरह जीवन विभिन्न स्थितियों से गुजरता हुआ अन्त तक पहुंचता है, उसी प्रकार नाटक का घटनाक्रम एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक विकसित होता हुआ आगे बढ़ता है। किसी एक तत्व या चीज का नाम रंगमंच कला नहीं है। रिचर्ड साउदर्न ने सादृश्य के बल पर उसका स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि रंगमंच प्याज की तरह है, उसके एक एक छिलके को निकालते जाये तो लगेगा कि यही रंगमंच कला है यानि कभी दृश्य—सज्जा, कभी संवाद और कभी अभिनय। एक छिलके को अलग छीलते जायेगें तो रंगमंच का सही स्वरूप हाथ नहीं लगेगा। रंगमंच की कला तो सम्पूर्ण वस्तु है और उसी में उसका सार तत्व निहित है। रंगमंच एक अनुभूति है, एक समन्वित कला है, सम्प्रेषण का एक साकार माध्यम है, रंगमंच इतना ही नहीं है, वह कृति ही नहीं, क्रियाप्रमाण भी है। वह स्वयं एक कार्य है। एक सर्जनात्मक कला से भी अधिक एक प्रदर्शनकारी कला, एक कार्यकारी कला है। फिर भी रंगमंच की कला की महानता न प्रदर्शन में निहित है, न प्रदर्शन की प्रणाली में, बल्कि उस प्रभाव में है जो कोई प्रदर्शन अपनी प्रणाली के कारण प्रेक्षक पर छोड़ जाता है। इसीलिये रंगमंच की कला क्रिया की नहीं, प्रतिक्रिया की भी कला है।'¹⁸

डॉ. गोविन्द चातक ने अपनी पुस्तक में यह जानकारी दी है कि 'मेरी ट्यूटर में मैडमजेल जॉर्ज के अभिनय को देखते हुए विकटर ह्यूगो ने कहा था: नाटककारी सृष्टि के अन्दर ही वह एक ऐसी सृष्टि करती है जो लेखक को स्वयं चकित और चमत्कृत करती है, इसी प्रकार मैडमजेल क्लेरन को एलेक्ट्रा के रूप में अभिनय करते देख वोल्तायर कह उठा था; यह मेरी रचना नहीं उसकी है—उसने अपनी सर्जना की है।'¹⁹ तो दूसरी ओर शेल्डन चेनी ने अपनी पुस्तक में गोर्डन केंग के मत का हवाला देते हुए कहा है: 'रंगमंच की कला न अभिनय है न नाटक, न दृश्य है न नृत्य, बल्कि वह उस सम्मिलित प्रभाव में है जो इन समस्त वस्तुओं के समन्वय से उत्पन्न होता है। डॉ. श्याम सुन्दर दास की दृष्टि में भी अभिनय के द्वारा ही नाटक अधिक प्रभावपूर्ण बन पाता है। अभिनय के लिए जो रूपक लिखे जाते हैं उनकी अभिव्यक्ति केवल भाषा द्वारा ही नहीं होती, रंगशाला के नटों, दृश्यों तथा अन्य उपकरणों से भी होती है। नट तथा नर्तकियाँ भागभंगिमाओं द्वारा नाटककार के आशय को स्पष्ट करती है और रंगमंच की सजावट उसकी रचना को अधिक प्रभावशाली बनाकर अभिव्यक्त करती है।'²⁰

नैमीचन्द्र जैन ने अभिनय पक्ष का महत्व स्वीकार करते हुए कहा है कि 'रंगमंच पर प्रदर्शित नाटक प्रेक्षकों का रंजन करके ही सम्पूर्ण और सफल होता है और अपना उद्देश्य पूरा करता है।'²¹ डॉ. कुसुम कुमार के अनुसार 'नाटक की सच्ची परीक्षा रंगमंच पर ही होती है।' जैसे व्यक्ति पूर्णता अपने प्रत्यक्ष रूप और शरीर में नहीं, अपने कर्मों के दर्पण में देखता है, ठीक उसी भांति नाटक पाण्डुलिपि में नहीं, अपने अन्तर्निहित रंगमंच में अभिव्यक्त होता है और तभी इस आत्मिक कसौटी से पाण्डुलिपि में छपे नाटक की निर्बलता और शक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव व्यावहारिक प्रस्तुतीकरण से प्राप्त होता है।

डॉ. सावित्री सिन्हा का मानना है कि रंगमंच से किसी देश व जाति की संस्कृति का स्वरूप उत्कर्ष होता है अतः उसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है— रंगमंच की महत्ता के विषय में इतना ही कहना उचित है कि किसी भी देश की संस्कृति का स्वरूप उस देश की रंगमंचीय उत्कृष्टता से भी जाना जा सकता है। नाटक एक दृश्य काव्य है, जिसका रसास्वादन एक साथ हजारों व्यक्ति कर सकते हैं। रंगमंच के द्वारा ही देश और जाति के उत्कर्ष की झांकी जनता के समक्ष रखी जा सकती है। मनोरंजन की दृष्टि से भी वह आवश्यक है।

डॉ. मान्धता ओझा के अनुसार— 'नाटककार सृजन के दौरान भी रंगमंच विधान से मुक्त नहीं होता। नाटक रचते समय नाटककार से मानव चक्षु के सामने दर्शक सदैव विद्यमान रहता है। दर्शकीय विद्यमानता ही नाटक के आकार—प्रकार कलात्मक स्तर और बौद्ध एवं आवेदन को निर्धारित करती है।²² इसी संबंध में मान्धता ओझा ने अपनी पुस्तक में ब्रैण्डर मैथ्यूज के मत को स्पष्ट किया है "नाटक कथोपकथन की शैली में रची गई एक ऐसी कहानी है, जिसे क्रिया—व्यापार के रूप में दर्शक के सम्मुख प्रदर्शित किया जाता है। मान्धता ओझा ने हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत का हवाला देते हुए लिखा है नाट्यार्थ या नाट्यानुभूति का समग्र मर्म तभी तथा विवृत हो सकता है, जब तक रंगमंच पर उसके अभिनय को देखा जाए। केवल पढ़कर नाटक के बारे में कोई निर्णय देना बहुत समीचीन नहीं हो सकता है। शुक्ल जी के अनुसार 'नाट्य का भावन दृश्य काव्य के रूप में किया है। दृश्य काव्य की अभिव्यक्ति के सौन्दर्य का ग्रहण अभिनय देखकर ही किया जा सकता है।²³

1.2 भारतीय रंगमंच की उत्पत्ति

'रंगमंच' की उत्पत्ति बड़ी रोचक है। अभिनवगुप्ताचार्य ने रंग शब्द का प्रयोग 'मंडप' अर्थात् 'रंगमंडप' या 'नाट्यमण्डप' के अर्थ में किया है— 'यस्माद्रुद्र प्रयोगेऽयं'। आचार्य—इय रामचंद्र—गुणचन्द्र ने भी इसी अर्थ में 'रंग' शब्द को ग्रहीत किया है। 'मंच' एक अर्वाचीन शब्द है जिसका अर्थ है वह मंडप या कार्य स्थल जहां कोई प्रयोग अर्थात् नाट्याभिनय किया जाए। इस प्रकार रंग और मंच दोनों का अर्थ एक ही है। रंग कहने मात्र से पूरे रंगमंच का बोध हो जाता है।²⁴

उत्पत्ति

ऐसा समझा जाता है कि नाट्यकला का विकास सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। ऋग्वेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, पुरूखा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं। इन संवादों में लोग नाटक के विकास का चिह्न पाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरणा ग्रहण कर लोगों ने नाटक की रचना की और नाट्यकला का विकास हुआ। यथासम्भव भरतमुनि ने इसे शास्त्रीय रूप दिया। भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में नाटकों के विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया है, "नाट्यकला की उत्पत्ति दैवी है, अर्थात् दुःख रहित सत्ययुग बीत जाने पर त्रेतायुग के आरंभ में देवताओं ने सृष्टा ब्रह्मा से मनोरंजन का कोई ऐसा साधन उत्पन्न करने की

प्रार्थना की जिससे देवता लोग अपना दुःख भूल सकें और आनंद प्राप्त कर सकें। फलतः उन्होंने ऋग्वेद से कथोपकथन, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर, नाटक का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने रंगमंच बनाया आदि।

नाटकों का विकास चाहे जिस प्रकार हुआ हो, संस्कृत साहित्य में नाट्य ग्रंथ लिखे गए और साहित्य में नाटक लिखने की परिपाटी संस्कृत से होती हुई हिन्दी को प्राप्त हुई। संस्कृत नाटक उत्कृष्ट कोटि के हैं और वे अधिकतर अभिनय करने के उद्देश्य से लिखे जाते थे। अभिनीत भी होते थे, बल्कि नाट्यकला प्राचीन भारतीयों के जीवन का अभिन्न अंग थी, ऐसा संस्कृत तथा पाणी ग्रंथों के अन्वेषण से ज्ञात होता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से तो ऐसा ज्ञात होता है कि नागरिक जीवन के इस अंग पर राज्य को नियंत्रण करने की आवश्यकता पड़ गई थी। उसमें नाट्यगृह का एक प्राचीन वर्णन प्राप्त होता है। अग्नि पुराण, शिल्परत्न, काव्य मीमांसा तथा संगीतमार्तंड में भी राजप्रसाद के नाट्यमण्डपों के विवरण प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार महाभारत में रंगशाला का उल्लेख है और हरिवंश पुराण तथा रामायण में नाटक खेले जाने का वर्णन है।

पाश्चात्य विद्वानों की भी धारणा है कि धार्मिक कृत्यों से ही नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। इससे रंगस्थली (यदि वास्तव में उसे रंगस्थली की संज्ञा दी जा सके) के प्रारंभिक स्वरूप की कल्पना की जा सकती है कि वह वृत्ताकार रही होगी। धीरे-धीरे जब दर्शनीयता की ओर अधिक ध्यान दिया गया होगा, तब यह अनुभव किया गया होगा कि इस वृत्ताकार रंगस्थली में केवल आगे के कुछ दर्शक की दृश्य का पूरा आनंद उठा सकते हैं। पीछे बैठने वालों को सिर उठाने की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से कटोरानुमा स्थान रंगस्थली के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाने लगा होगा। धार्मिक कृत्यों और नृत्य के लिये यह उत्तम प्रबंध था। धीरे-धीरे जब नाटकों का रूप अधिक विकसित हुआ, तब यह अनुभव हुआ कि कथाकार और अभिनेताओं के सामने की ओर बैठने वालों को ही देखने और सुनने की अच्छी सुविधा होती है। इसके लिये पर्वतीय स्थानों में घाटी बहुत उपयुक्त प्रतीत हुई होगी, जिससे ढाल पर बैठे दर्शक नीचे अभिनेताओं को भली भाँति देख सुन सकते थे और उनके पीछे फैला हुआ विस्तृत भूखंड सहज सुंदर चित्रित प्राकृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता था। शायद इसी की अनुकरण अपर्वतीय पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता था और इसी का अनुकरण अपर्वतीय स्थानों में कृत्रिम रंगशालाएं बनाकर किया गया; जिनमें वृत्ताकार दीवार के अंदर सीढ़ीनुमा स्थान दर्शकों के बैठने के लिये होता था, जो भीतर बने ऊंचे चबूतरे को तीन ओर से घेरे रहता था। चौथी ओर सीधी दीवार होती थी, जिसमें सुंदर चित्रकारी होती थी। इसके पीछे नेपथ्य होता था। जहां अभिनेताओं की उठने-बैठने और उनकी रूप-सज्जा का प्रबंध रहता था।

उपर्युक्त चिरप्रतिष्ठित रंगशाला के प्राचीन रूपों में धीरे-धीरे सुधार होता गया। कालांतर में प्रेक्षास्थान तीन ओर के बजाय केवल एक ओर, सामने ही सामने रह गया। सारा बिन्यास गोल से बदलकर चौकोर हो गया और नाट्यशाला का आधा, या इससे भी अधिक स्थान धेरने लगा।²⁵

1.2.1 स्वतंत्रता पूर्व रंगमंच का स्थान

अंग्रेजों के जमाने के तत्कालीन विधि प्रधान होब हाऊस को लैजिस्लेटिव कौंसिल में कहना पड़ा कि पृथ्वी पर प्रत्येक देशकाल में एक बात सिद्ध हो चुकी है कि मानव-मस्तिष्क को प्रभावित करने के लिये नाटक से सबल कोई साधन नहीं है। स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत सन् 1857 ई. से ही माना जा सकता है और हिन्दी नाट्यान्दोलन का भी आदिकाल भारतेन्दु युग ही रहा है। इसकी शुरुआत विश्व क्रांति तथा नुक्कड़ नाटकों के प्रारंभ की चर्चा की गई है। इसमें यूरोप का युनिटी थियेटर चीन की जनता की जापान विरोधी नाट्य समिति, वियतनाम द्वारा जापानी, फ्रांसीसी एवं अमरीकी हमलावारों के खिलाफ क्यूवा के क्रांति के बाद पूरे लैटिन, अमरीका और अफ्रीका में राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के दौरान नुक्कड़ नाटकों की खुलकर भागीदारी की चर्चा है। दूसरा सन् 1857 के आंदोलन में लोक-साहित्य की भूमिका की विस्तार से चर्चा की गई है। उस समय आजादी के तराने गाये जाते थे। उनमें से कुछ गीतों को उद्धरित किया गया है।

आज शहीदों ने है तुमको अहले बतन ललकारा।

तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओं अंगारा।

हिन्दु मुसलमाँ, सिक्ख हमारा, भाई-भाई प्यारा।

यह है आजादी का झंडा, इसे सलाम हमारा।

भारतेन्दु ने भी अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम नाटक को ही माना है। भारतेन्दु के नाटकों का प्रेरणा-स्रोत बांग्ला नाटक ही रहा है। उन्होंने तत्कालीन पारसी थियेटर का विरोध करते हुये अपने नाटकों में लोक तत्वों का प्रयोग किया है। मोतीचन्द्र के इस कथन को उद्धरित किया है— “आधुनिक लेखकों को शायद वे नाटक भाषा और भाव की दृष्टि से पुराने लगें, पर इसमें संदेह नहीं कि इन नाटकों से हिन्दी के उस रंगमंच की नींव पड़ी, जो तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण उपादान के रूप में सामने आया।” भारतेन्दु युग के बाद प्रसाद युग और उसकी स्वाधीनता आंदोलन में भूमिका की विस्तार से चर्चा की गई है। प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक का सिकन्दर कहता है— “मुझे उस ब्राह्मण की बातों से बड़ी आशंका हो रही है। भविष्यवाणियाँ प्रायः सत्य होती हैं।” यह कथन चाणक्य के लिये है, किन्तु निर्देश निश्चित रूप से गांधी की ओर है। प्रसाद के समवर्ती नाटककारों में माधव-शुक्ल, बदरीनाथ भट्ट, जमुना प्रसाद मेहरा, पं प्रताप द्वारा पौराणिक कथा पर आधारित नाटक भी सम-सामयिक सामाजिक चेतना जाग्रत करने में सफलता हासिल की है। उस समय पारसी रंगमंच का काफी जोड़ था। लेखक इस माध्यम से भी जन-जागरण का काम किया करते थे।

“अंग्रेजों के शासनकाल में भारत की राजधानी जब कलकत्ता (1911) थी, वहां 1854 में पहली बार अंग्रेजी नाटक मंचित हुआ। इससे प्रेरित होकर नवशिक्षित भारतीयों में अपना रंगमंच बनाने की इच्छा जगी। मंदिरों में होने वाले नृत्य, गीत आदि आम आदमी के मनोरंजन के साधन थे। इनके अलावा रामायण अथवा महाभारत जैसी धार्मिक कृतियों, पारंपरिक लोक नाटकों, हरिकथाओं, धार्मिक गीतों, जात्राओं जैसे पारंपरिक मंच प्रदर्शनों से भी लोग मनोरंजन करते थे। पारसी थियेटर से लोक रंगमंच का जन्म हुआ। एक समय में सम्पन्न पारसियों ने नाटक कंपनी खोलने की पहल की और धीरे-धीरे यह मनोरंजन का एक लोकप्रिय माध्यम बनता चला गया।

इसकी जड़ें इतनी गहरी थीं कि आधुनिक सिनेमा आज भी इस प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है।

पारसी रंगमंच, 19 वीं शताब्दी के ब्रिटिश रंगमंच के मॉडल पर आधारित था। इसे पारसी रंगमंच इसलिए कहा जाता था क्योंकि इससे पारसी व्यापारी जुड़े थे। वे इससे अपना धन लगाते थे। उन्होंने पारसी रंगमंच की अपनी पूरी तकनीक ब्रिटेन से मंगायी। इसमें प्रोसेनियम स्टेज से लेकर बैक स्टेज की जटिल मशीनरी भी थी। लेकिन लोक रंगमंच-गीतों, नृत्यों परंपरागत लोक हास-परिहास के कुछ आवश्यक तत्वों और इनकी प्रारंभ तथा अंत की रवाइतों को पारसी रंगमंच ने अपनी कथा कहने की शैली में शामिल कर लिया था। दो श्रेष्ठ परंपराओं का यह संगम था और अनेक मंचीय प्रदर्शन पौराणिक विषयों पर होते थे जिनमें परंपरागत गीतों और प्रभावी मंचीय युक्तियों का प्रयोग अधिक होता था। कथानक गढ़े हुए और मंचीय होते थे जिसमें भ्रमवश एक व्यक्ति को दूसरा समझा जाता था, घटनाओं में संयोग की भूमिका होती थी, जोशीले भाषण होते थे, चट्टानों से लटकने का रोमांच होता था और अंतिम क्षण में उनका बचाव किया जाता था, सच्चरित्र नायक की दृष्टरित्र खलनायक पर जीत दिखायी जाती थी और इन सभी को गीत-संगीत के साथ विश्वसनीय बनाया जाता था।

औपनिवेशिक काल में भारत के हिन्दी क्षेत्र के विशेष लोकप्रिय कला माध्यमों में आज के आधुनिक रंगमंच और फिल्मों की जगह आल्हा, कव्वाली मुख्य थे। लेकिन पारसी थियेटर आने के बाद दर्शकों में गाने के माध्यम से बहुत सी बातें कहने की परंपरा चल पड़ी जो दर्शकों में लोकप्रिय होती चली गयी। बाद में 1930 के दशक में आवाज रिकॉर्ड करने की सुविधा शुरू हुई और फिल्मों में भी इस विरासत को नये तरह से अपना लिया गया। वर्ष 1853 में अपनी शुरुआत के बाद से पारसी थियेटर धीरे-धीरे एक 'चलित थियेटर' का रूप लेता चला गया और लोग घूम-घूम कर नाटक देश के हर कोने में ले जाने लगे। पारसी थियेटर के अभिनय में 'मेलोड्रामा' अहम तत्व था और संवाद अदायगी बड़े नाटकीय तरीके से होती थी। आज भी फिल्मों के अभिनय में पारसी नाटक के तत्व दिखाई देते हैं।

80 वर्ष तक पारसी रंगमंच और इसके अनेक उपरूपों ने मनोरंजन के क्षेत्र में अपना सिक्का जमाए रखा। फिल्म के आगमन के बाद पारसी रंगमंच ने विधिवत् अपनी परंपरा सिनेमा को सौंप दी। पेशेवर रंगमंच के अनेक नायक, नायिकाएं सहयोगी कलाकार, गीतकार, निर्देशक, संगीतकार सिनेमा के क्षेत्र में आए। आर्देशिर ईरानी, वाजिया ब्रदर्स, पृथ्वीराज कपूर, सोहराब मोदी और अनेक महान दिग्गज रंगमंच की प्रतिभाएं थीं जिन्होंने शुरुआती तौर में भारतीय फिल्मों को समृद्ध किया।”

भारतीय साहित्य और संस्कृति के इतिहास में आधुनिकता का आरंभ अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही माना जाता है। राजधानी के रूप में कलकत्ता अंग्रेजों का व्यापारिक और राजनैतिक केन्द्र रहा है। यहाँ अंग्रेजी भाषा के नाटकों का आरंभ अंग्रेजों के व्यापारिक क्लबों और नाचघरों में ही हुआ। हेमेन्द्र गुप्ता ने 1756 ई. में लाल बाजार और मिशन रोड के मोड़ पर स्थित बाड़ी में 'प्ले हाउस' नाम से रंगशाला खुलना स्वीकार किया है। प्लासी के युद्ध के समय भी इसी स्थान पर एक रंगशाला का अस्तित्व स्वीकार किया है जो अंग्रेजी के नाटक खेलती थी। आधुनिक काल में यह भारत की प्रथम रंगशाला थी। सन् 1757 ई. में प्लासी के युद्ध में इसी रंगशाला से पश्चिम के किले पर सिराजुद्दौला ने तोपें दागी थीं। इन्हीं की

देखा-देखी और रंगशालाएं खुलीं जिनमें अंग्रेजी के नाटक हुआ करते थे। पहले स्त्रियों का अभिनय पुरुष ही करते थे किन्तु बाद में कुलीन महिलाएं भी मंच पर उतरने लगीं। इस रंगमंच ने धीरे-धीरे पाश्चात्य शैली के मंच को विकसित किया जिस के प्रभाव और अनुकरण ने प्रान्तीय भाषा का गला धोंट दिया। अंग्रेजी के प्रभाव ने लोककलाओं और लोकनाटकों के सुन्दर रूपों को दबा दिया।²⁶

अंग्रेजी भाषा के थियेटर में ही 1795 ई. में पहला बंगला नाटक प्रदर्शित हुआ जिसमें स्त्री पात्रों की भूमिकाएं महिलाओं के द्वारा ही अभिनीत की गईं। तदन्तर इसकी निरन्तर परम्परा बन गई। उन्नीसवीं सदी में बहुत से नाटककारों ने अंग्रेजी में लिखना और नाटक प्रस्तुत करना आरंभ किया, किन्तु धीरे-धीरे वे भी बंगला रंगमंच की ओर मुड़ गये। कलात्मक दृष्टि से समृद्ध और सम्पन्न बन कर उसने समस्त भारत की मंचीय गतिविधियों को नेतृत्व प्रदान किया और माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीश चन्द्र घोष और शिशिर भादुड़ी जैसे कलाकारों को जन्म दिया।

हिन्दी, गुजराती और मराठी का रंगमंच बंगला के समानान्तर विकसित नहीं हुआ। 17वीं शताब्दी के अंत तक मराठा शासकों की सभा में होने वाले मराठी नाटक संस्कृत नाट्य-परम्परा से प्रभावित थे किन्तु महलों की सीमा पार कर ये जनता तक नहीं पहुँच पाए। लगभग डेढ़ सौ साल बाद 1843 में सांगली (महाराष्ट्र) में एक नए प्रकार के अलिखित नाटक का उदय हुआ और समय पाकर वह जनसाधारण की वस्तु बन गया। इसका श्रेय विष्णुदास भावे को है।

19वीं शती के आठवें दशक तक भावे पद्धति के नाटक जनमानस को रंजित करते रहे। 1862 ई. में अंग्रेजी नाट्य-पद्धति से प्रभावित नाटकों की परम्परा का आरंभ 'थोरले माधवराव पेशवे' के मंचन से आरंभ हुआ। 1880 में अण्णासाहेब किल्लोस्कर की नाट्य मंडली का उदय हुआ। पाश्चात्य शैली से प्रभावित होकर भी इनके नाटक मराठी रंगभूमि की देन थे। इसमें गद्य-पद्य के मिश्रण के साथ संगीत के योगदान ने संगीत नाटकों की परम्परा को जन्म दिया जो आगे जाकर श्रीपाद कृष्ण कोल्हट के द्वारा विकसित हुई।

चौदहवीं शताब्दी में आविर्भूत भवई की परम्परा के हास और अंग्रेजी के प्रभाव स्वरूप गुजराती और पारसी लेखकों का ध्यान नाट्य लेखन की ओर गया। 1882 ई. में दादाभाई नौरोजी ने प्रथम पारसी नाटक मंडली की स्थापना कर 'रुस्तम अने सोहराब' नाटक का मंचन किया। निश्चित रूप से यह 1853 ई. में अभिनीत भावे के 'गोपीचन्दाख्यान' की सफलता से प्रेरित होकर किया गया था। इसके बाद अव्यावसायिक मंडलियों की स्थापना हुई जिन्होंने प्रकारान्तर से व्यावसायिकता अपना ली। गुजराती-उर्दू से आरंभ होने वाली इस परम्परा ने पहला गुजराती नाटक 1878 ई. में प्रस्तुत किया जिसकी रचना का श्रेय रणछोड़ भाई उदयराम को है।

व्यवसायी रंगमंच नाटक

पारसी थियेट्रिकल कम्पनी को रंगमंचीय नाटक कंपनी के नाम से पुकारा जाता है इस कम्पनी की उत्पत्ति की कहानी 'इन्द्र सभा' के साथ जोड़ी जाती है। कहा जाता है कि वाजिदअली शाह के प्रोत्साहन से अमानत कवि ने यह नृत्य-संगीतमय गीतिनाट्य प्रस्तुत किया और रंगमंच पर स्वतः वाजिदअली शाह ने इन्द्र का अभिनय किया। इस नाटक की इतनी ख्याति हुई कि विभिन्न देशी और विदेशी भाषाओं में इसका रूपांतर हुआ। इसका संगीत सुनने और अभिनय देखने को जनता इतनी लालयित रहती थी कि मेले-ठेले में इसका तमाशा 'पैसा तमाशा' के नाम से दिखाया जाने लगा। इसी व्यवसाय को देखकर कतिपय उत्साही पारसी सज्जनों ने एक थियेट्रिकल कम्पनी खोलने का संकल्प किया। उन्होंने सर्वप्रथम सोहराब और रूस्तम की कहानी को नाटक का रूप देकर अति साधारण रंगमंच पर अभिनय दिखाना प्रारंभ किया। पेस्टन जी फेमजी ने संवत् 1927 वि. के आसपास 'ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी' नाम से एक कम्पनी खोली और उसमें खुरशेदजी बल्लीवाला, कावसजी खटाऊ, सोहराब जी और जहाँगीर जी आदि अभिनेता अभिनय करने लगे।²⁷

इस मंच के लिए नाटक लिखने वालों की संख्या चार सौ के करीब है, जिन्होंने कई अच्छे और स्तरीय नाटक लिखे हैं। आगा हश्र कश्मीरी, नारायण प्रसाद बेताव, राधेश्याम कथावाचक तथा तुलसीदत्त शैदा जैसे नाटककार इसी युग की देन हैं। इस युग में करीब पचास नाटक मण्डलियाँ सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर इन नाटकों का प्रदर्शन करती रहीं। इनमें से मुख्य इस प्रकार है—विक्टोरिया नाटक मण्डली, अल्फ्रेड नाटक मण्डली, एलफिन्स्टन नाटक मण्डली, अलेक्जेंड्रा नाटक मण्डली, पारसी नाटक मण्डली, पारसी इम्पीरियल नाटक मण्डली, कोरानेशन नाटक मण्डली, इम्प्रेस विक्टोरिया नाटक मण्डली, ओरीजिनल विक्टोरिया नाटक मण्डली, मादन थियेटर्स आदि।

पारसी नाटक मण्डलियों के मंच दो प्रकार के थे। एक तो स्थायी और दूसरे अस्थायी। स्थायी मंच के अन्तर्गत इन नाटक मण्डलियों ने अपने-अपने स्थान पर स्थायी रंगशालाओं का निर्माण कर लिया था। केवल बम्बई में सन् 1848 ई. से 1900 ई. के मध्य करीब 25 रंगशालाएँ थीं जिनमें प्रतिदिन नाटकों का मंचन होता था। कलकत्ते में भी इसी प्रकार की रंगशालाओं का निर्माण हुआ था। अपने नाटकों का प्रदर्शन करने के लिए ये नाटक कम्पनियाँ देश विदेश का दौरा किया करती थीं और नाट्य प्रदर्शन के लिए अस्थायी मंच का निर्माण करती थीं जो पेटियों का बना हुआ, मजबूत और आकार में काफी लम्बा-चौड़ा होता था। पारसी मंच पर पर्दों का होना आवश्यक था।²⁸

अव्यवसायी रंगमंच नाटक

मंचीय नाटकों में किञ्चित् अश्लीलता तथा व्यावसायी वृत्ति का विरोध हिन्दी के नाटककारों ने जमकर किया फलतः व्यावसायिक मंच की प्रतिक्रिया के रूप में अव्यवसायी अथवा शौकिया मंच की स्थापना की गई। उत्तर भारत में जिन स्थानों पर अव्यवसायी रंगमंचन की स्थापना हुई उनमें बनारस, कानपुर, प्रयाग, झाँसी, पटना, छप्परा, कलकत्ता आदि प्रमुख हैं। स्वयं भारतेन्दु जी ने

अव्यावसायी मंच को प्रेरणा दी। हिन्दी के नाटककारों ने ऐसी कई नाट्य संस्थाएँ बनाईं। इनमें दर्शकों से तो पैसे लिए जाते थे पर अभिनेताओं को पारिश्रमिक की व्यवस्था नहीं थी। 1868 में अव्यवसायी मंच पर शीतलाप्रसाद कृत 'जानकी मंगल' नाटक का मंचन हुआ।

अव्यवसायिक रंगमंच का एक स्वरूप 'जन नाट्य संघ' के रूप में उभर कर सामने आया। प्रगतिशील आन्दोलन ने इसे जन्म दिया था। 'जन नाट्य संघ' एक सार्थक और उपयोगी मंच था। यह प्रगतिशील साहित्यकारों के भरपूर परिश्रम और सूझबूझ से भरा हुआ साफ-सुथरा मंच था। कानपुर में सन् 1942-43 में इसकी स्थापना हुई। जन जागरण और जन समस्याओं को केन्द्र में रखकर (इष्टा) जन नाट्य संघ ने सैकड़ों नाटकों की रचना की और गाँव-गाँव में इनका मंचन किया गया।

अव्यवसायिक रंगमंच का तीसरा रूप विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की नाट्य समितियाँ रही हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में नाट्य शिक्षण और मंचन प्रशिक्षण के लिए भी व्यवस्थाएँ की गयीं। महाविद्यालयों और अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में वार्षिकोत्सवों आदि के अवसरों पर नाटकों का मंचन सतत होता रहा है पर आठवें दशक के पश्चात् यह गति भी मंद होने लगी है। सन् 60 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना के पश्चात् हिन्दी-नाटक आन्दोलन ने नया स्वरूप ग्रहण किया तथा रवीन्द्र शताब्दी वर्ष में देश के कई प्रमुख शहरों में रवीन्द्र नाट्य गृहों का निर्माण किया गया। जिसमें यदा कदा नाटक होते रहते हैं।

सिनेमा का प्रसार और टेलीविजन की अधिकता के कारण तथा व्यावसायिक मंच को टुकड़ा दिये जाने के कारण आज भी हिन्दी का अव्यवसायिक मंच व्यवस्थित रूप ग्रहण नहीं कर पा रहा है। पूरे देश में हिन्दी का ऐसा कोई स्थायी मंच नहीं है जहाँ प्रतिदिन नाटक खेले जाते हों। नाटकों का मंचन व्यय साध्य और श्रम साध्य हैं। अव्यवसायी अभिनेताओं को अपनी आजीविका के लिए अन्य कार्य करने पड़ते हैं। हिन्दी क्षेत्र में अभी भी दर्शकों की समस्या यथावत् बनी हुई है। टिकिट खरीदकर नाटक देखने वालों की संख्या कम ही है। नाट्यशालाओं का भी अभाव बराबर बना हुआ है। इस स्थिति में अव्यवसायी रंगमंच बराबर गति नहीं पकड़ रहा है। लेकिन प्रयत्न अवश्य कर रहा है।²⁹

1.2.2 स्वतंत्रता पश्चात् रंगमंच का स्थान

स्वतंत्रता से पूर्व, लगभग 1936-38 के आस-पास जहाँ एक ओर पारसी हिन्दी रंगमंच अपनी चरम परिणति पर पहुँचकर सिनेमा के आगमन अथवा सिनेमा के अंक में समा जाता है, दूसरी ओर जहाँ हिन्दी का शौकिया रंगमंच भी केवल एकांकी नाट्य प्रदर्शन— वह भी केवल कॉलेज विश्वविद्यालयों के रंगमंच तक सीमित हो जाता है, और तीसरी ओर जहाँ इस काल के प्रायः सभी नाटककार अपनी प्रतिभा को केवल 'नाट्य लेखन' तक ही सीमित कर लेते हैं। वहाँ स्वभावतः रंगमंच स्तर से, उसके जगत और क्षेत्र में एक शून्यता और रिक्तिता पैदा होती है।

व्यवहारिक हिन्दी रंगमंच में यह शून्यता तब से आजादी तक लम्बे काल तक खिंची रही। ऐतिहासिक दृष्टि से उस शून्यता को तोड़ने और इसे रंगरंजित करने की दिशा में—प्रत्यक्ष न सही, तो परोक्ष ही ढंग से दो रंगमंच दलों ने रंगमंच शक्तियों ने, उल्लेखनीय कार्य किया है।

इप्टा-इंडियन पीपुल थियेटर पृथ्वी थियेटर

ये दोनों नाट्य दल अपने लक्ष्यों के साथ अवतरित हुए। 'इप्टा' का चरित्र मूलतः राजनीतिक था- विशेषतः साम्यवादी पार्टी का यह रंगमंचीय आयाम या स्वरूप था। इस सीमा अथवा राजनीतिक मर्यादा के बावजूद इसने भारतीय रंगमंच की बड़ी सेवा की। इसने अपने रंगमंच से खोजकर, प्रस्तुत कर यह दिखाया कि भारत का नया, अपना रंगमंच कितना, कैसे अपने लोक रंगमंच से कितने रंगतत्व ले सकता है। दूसरे रंगमंच जब सही अर्थों में मानव पदार्थ से जुड़ता है, तब उसका क्या अपूर्व व्यक्तित्व होता है। तीसरे कुछ कहने के लिये, भावनामय संवाद, बौद्धिक, तार्किक कथोपकथन, बड़ी-बड़ी धटनाओं, मंच दृश्यों की आवश्यकता नहीं होती; बल्कि मानव सुख-दुख के गायन, नर्तन, हंसी-मजाक, व्यंग प्रहसन, नकल के धरातल से जीकर, प्रस्तुत कर 'बात' कही जा सकती है और अपार दर्शक वर्ग तक पहुंचायी जा सकती है। इस रंगमंच का मूल क्षेत्र था, बंगला और महाराष्ट्र मुख्य केन्द्र थे, कलकत्ता और बम्बई। मुख्यतः बंगला, मराठी भाषा में ही इसने अपनाया। इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, पटना, दिल्ली इस नाट्यपथ के अक्सर पड़ाव बन जाते थे।

पारसी थियेटर से अलग हटकर, हिन्दी सिनेमा में संगीत की होड़ में इसने रंगकला, समाज आदर्श, श्रेष्ठ अभिनय, इन सबको अतिनाटकीय नाटकों से मिलकर एक नया अध्ययन शुरू किया। स्वतंत्रता के बाद पूरे भारतवर्ष में, विशेषकर हिन्दी क्षेत्र की स्थिति में, मनोदशा में एक अपूर्ण परिवर्तन आया।³⁰

इप्टा के गठन के लगभग दो वर्ष बाद ही बम्बई में एक और नाट्य संस्था का उदय हुआ इसने भी फिल्मी जगत को बड़ी-बड़ी हस्तियां दीं। वह थियेटर था 'पृथ्वी थियेटर'।

पृथ्वी थियेटर की स्थापना 15, जनवरी, 1944 को पृथ्वीराज कपूर ने लगभग 100 कलाकारों के सहयोग से, बम्बई में की। 'पृथ्वी थियेटर' शुद्ध व्यावसायिक रंगमंच था जो रंगकर्म को गंभीरता से लेने के उद्देश्य से सामने आया। जहां बलराज सहानी इप्टा से जुड़े थे वही उनकी पत्नी पृथ्वी थियेटर से जुड़ी थीं। पृथ्वी थियेटर अपने तरह का पहला रंगमंच था जिसने व्यावसायिकता के आधार पर रंगमंच को पकड़ा। पारसी रंगमंच की भांति इसने भी जनता तक पहुंचने के लिए जनता की जुबान में अपनी बात कही।³¹



पृथ्वी थियेटर



इप्टा थियेटर

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत यहाँ जो नयी सांस्कृतिक चेतना जगी, उसमें रंगमंच-विषयक नवोन्मेष का सत्य परम उल्लेखनीय है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार की ओर से प्रायः नाट्य महोत्सव होने लगे। मुख्यता हिन्दी क्षेत्र में और उसके प्रतिनिधि नगरों जैसे- दिल्ली, लखनऊ इलाहाबाद, कानपुर, पटना, जबलपुर आदि में अनेकों नाट्य-संस्थाएं बनीं। सांस्कृतिक समारोहों तथा उद्घाटन के अवसरों से लेकर मंत्रियों तथा अफसरों के स्वागत-उपलक्ष्य में और गांव में विकास केन्द्र के जलसों तक नाट्य प्रदर्शन की व्यापकता हमें देखने को मिलने लगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, हमारे देश का अंतर्राष्ट्रीय संबंध संसार के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत तेजी से आगे बढ़ा। इस संदर्भ में यह भी स्पष्ट है कि हमारा देश राजनीति के स्तर से अधिक सांस्कृतिक स्तर से शेष संसार के संपर्क में आया- और विशेषकर ऐसे समुन्नत राष्ट्रों के संपर्क में, जो आर्थिक, औद्योगिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में हमसे बहुत-बहुत आगे थे। स्वभावतः हमारा देश बहुत ही उदार भावना, और पूर्ण विश्वास से, मुख्यतः अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ उन समुन्नत राष्ट्रों के सामने आया। इंग्लैंड, अमरीका, रूस, फ्रांस तथा ऐसियाई देशों से हमारे सांस्कृतिक आदान-प्रदान प्रारंभ हुए। बड़े-बड़े सांस्कृतिक शिष्ट-मण्डल कभी नृत्य के, कभी संगीत, चित्रकला तथा फिल्म आदि के, आने जाने लगे। हमने बड़े गर्व से विदेशी शिष्टमंडलों को अपनी मूर्तिकला, स्थापत्य कला, नृत्य और संगीत कला के मेले और प्रदर्शनी दिखलाई और इस देश की सांस्कृतिक उपलब्धियों ने उन समुन्नत राष्ट्रों को खूब प्रभावित किया। यहाँ न कोई जीवित रंगमंच था और न ही कोई व्यावहारिक नाट्यकला थी। जब हम भारतीय रंगमंच कहते हैं तो हमारे सामने बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, दक्षिण भारत और हिन्दी का वह बहुरंगी, बहुरूपी विविध रंगमंच की बहुआयामी तस्वीर उभरती है। जिसमें कई परम्परायें हैं, तथा विभिन्न रंग संस्कार हैं। इन सब धाराओं, रंगों और परंपराओं के भीतर से ही भारतीय रंगमंच की अवधारणा प्राप्त की जा सकती थी। इसके लिये किसी एक ऐसे केन्द्रीय रंग संस्थान की अनिवार्यता महसूस की गयी जो अखिल भारतीय स्तर पर उसके बहुरंगी, बहुआयामी रंग स्थितियों के सेतु अथवा माध्यम बनकर भारतीय रंगमंच की प्रतिष्ठा में योग दे सके।

रंगमंच स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम दशक की समाप्ति के समय तक (दो एक अपवादों को छोड़कर) पारसी रंगमंच की अतिरंजनापूर्ण शैली यानि स्कूल कॉलेजी स्तर की सतही यथार्थवादी पद्धति से आक्रांत और प्रदर्शन-मूल्यां की दृष्टि से अत्यंत निराशाजनक स्थिति में था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि विभिन्न कारणों से धीरे-धीरे इन तमाम संस्थाओं का विघटन होता चला गया। महानगरों का तत्कालीन रंगकर्म भी वहाँ के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन की अपेक्षाओं की सहज उपज न होकर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की निजी प्रतिष्ठा एवं महत्वाकांक्षा से उद्भूत होने के कारण प्रायः साहित्यिक, सांस्कृतिक दृष्टि और गंभीर रंगसंस्कार से रहित महज मनोरंजन, तफरीह अथवा आत्म-प्रचार के प्रदर्शन का जरिया भर बनकर रह गया था। इब्राहिम अल्काजी के शब्दों में, 'भारतीय रंगमंच के विकास में छठा दशक अनेक कारणों से बहुत ही समृद्ध और महत्वपूर्ण कालों में से एक माना जाएगा। सबसे स्पष्ट और सबसे प्रमुख कारण यही है कि इन वर्षों में रंगकला की आनुषंगिक शाखाओं-नाट्य-लेखन, अभिनय, निर्देशन, मंच-परिकल्पना एवं प्रकाश-व्यवस्था ने विशिष्ट प्रतिभाओं के जरिए प्रौढ़ता प्राप्त कर ली।

रंगमंच की जरूरतों और अपेक्षाओं को पूरी तरह ध्यान में रखकर लिखे जाने वाले नाटकों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है-नुक्कड़ नाटक। 'जन नाट्य मंच' और 'निशांत' जैसे देश के

बहुसंख्य नुक्कड़ नाटक दलों द्वारा प्रस्तुत नाटक इसी प्रकार की सामूहिक रचना-प्रक्रिया के तहत तैयार किए गए हैं।³²

आज हमारे देश में रंगमंच प्रायः अव्यावसायिक रूप में क्रियाशील है, इसीलिए उसके विकास की गति बहुत मन्द है। कलाकार शौकिया रूप में रंगमंच से जुड़े हैं। रंग संस्थाओं के पास मंचीय उपकरणों की कमी है। कलाकार भी अच्छे स्तर के अधिक नहीं हैं। अव्यावसायिक रंग-संस्थाएँ नियमित रूप से नाटकों का मंचन नहीं कर पातीं और इसीलिए नाटक के दर्शक भी तैयार नहीं हो पाते। अव्यावसायिक रंग-संस्थाएँ अर्थाभाव से दबी होती हैं। वे अपने कलाकारों को आर्थिक रूप से कोई सहयोग नहीं दे पाते, इसीलिए कलाकार भी अपने कार्य के प्रति उत्साह नहीं रखते। रंगमंच को एक आवश्यक आवश्यकता के रूप में विकसित करने की जरूरत है। यद्यपि आज रंगमंच सहजीकरण की ओर उन्मुख है। बहुत ताम-झाम अब रंगमंच के लिये आवश्यक नहीं है। अब तो खुले मंच पर भी नाटक सफलतापूर्वक मंचित हो रहे हैं। अयथार्थवादी और प्रतीक रंगमंच ने रंगकर्म को बहुत सहज बना दिया है।³³

संदर्भित ग्रंथ

1. तनेजा, जयदेव (2010) "आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श नाटक तेरे रूप अनेक" राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं.-13
2. सिंह, डॉ. केदारनाथ (1985) "हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच" विद्या विहार प्रकाशन, पृष्ठ सं.-43
3. शुक्ला, डॉ. धीरेन्द्र (2004) "हिन्दी नाट्य परिदृश्य" प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-10-11
4. प्रसाद, जयशंकर (1939) "काव्य और कला तथा अन्य निबंध" पृष्ठ सं.-94-96
5. शर्मा, डॉ. विश्वनाथ (1979) "हिन्दी रंगमंच का उद्भव और विकास" राज पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ सं.-10
6. ओझा, डॉ. दशरथ (1995) "हिन्दी नाटक उद्भव और विकास" राजपाल एण्ड सन्स पब्लिशिंग, पृष्ठ सं.-82-84
7. सिंह, डॉ. केदारनाथ (1985) "हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच" पृष्ठ सं.-46
8. चावला, टीना "हिन्दी नाटक और संगीत" संजय प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-9
9. लखपति "लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में रंगमंचीयता" पृष्ठ सं.-3
10. वर्मा, रामचन्द्र (1968) "शब्दार्थ दर्शन" पृष्ठ सं.-473
11. परमार, डॉ. श्याम (1956) "लोकधर्मी नाट्य परम्परा" हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पृष्ठ सं.-28
12. लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण (1965) "रंगमंच और नाटक की भूमिका" नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ सं.-16
13. पटेल, डॉ. शैलेश मो. "डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों का रचना विधान" पृष्ठ सं.-53-54
14. पारीक, इन्दुबाला "नया हिन्दी नाटक संवेदना और रंगशिल्प" क्लासिक पब्लिकेशन्स, पृष्ठ सं.-9
15. छायाण्ट- 93, 2001 जनवरी मार्च, पृष्ठ सं.-22
16. भरत मुनि, "नाट्यशास्त्र" पृष्ठ सं.-106,116
17. चातक, गोविन्द (1988) "रंगमंच कला और दृष्टि" तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ सं.-26,29
18. साउदर्न, रिचर्ड, सेवन ऐजेज आव थियेटर, पृष्ठ सं.-21
19. चातक, गोविन्द (1988) "रंगमंच कला और दृष्टि" तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ सं.-35

20. दास, श्यामसुन्दर (2007) "साहित्यलोचन" वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं.-55
21. जैन, नैमीचन्द्र (1993) "रंगदर्शन" राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं.-21
22. ओझा, डॉ. मान्धाता (1976) "हिन्दी नाट्य समालोचन" राजपाल एण्ड सन्स, पृष्ठ सं.-23
- शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र (2009) "हिन्दी साहित्य का इतिहास" राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं.-52
24. गोकककर, डॉ० सुधाकर, माली, डॉ० शिवराम (1979) "नाटक और रंगमंच" नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयीदिल्ली, पृष्ठ सं.-193
25. <http://wikipedia.org/wiki/रंगमंच>
26. गार्गी, बलबंत (1962) "रंगमंच" नवयुग पब्लिशर, पृष्ठ सं.-177
27. ओझा, डॉ. दशरथ (1995) "हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास" राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, पृष्ठ सं.-289
28. मोहन, डॉ. नरेन्द्र (2009) "समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच" वाणी प्रकाशन नईदिल्ली, पृष्ठ सं.-151-152
29. मोहन, डॉ. नरेन्द्र (2009) "समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच" वाणी प्रकाशन नईदिल्ली, पृष्ठ सं.-154,156
30. श्रीवास्तव, डॉ. आशा रानी (2013) "हिन्दी नाटक और रंगमंच" भारत प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ सं.-246
31. वासवानी, डॉ. किशोर (1998) "सिनेमाई भाषा और हिन्दी संवादों का विश्लेषण" हिन्दी बुक सेन्टर नईदिल्ली, पृष्ठ सं.-84
32. डॉ. जयदेव, तनेज (2002) "रंगकर्म और मीडिया" तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ सं.-103-104-112
33. शुक्ला, डॉ. धीरेन्द्र (2009) "हिन्दी नाट्य परिदृश्य" नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-12